मई १९९१ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

पुक्कुसाति (२)

गतांक से आगे...

चला त्यागकर राज्य-सुख

बिम्बिसार ने यह पत्र रत्नखचित स्वर्ण-मंजूषा में रखकर उसे एक के ऊपर एक ,दस बहुमूल्य पेटियों में बन्द करवाया और लाख की चपड़ी लगा राज्य-मुहर से सील-बंद किया। फिर उसे मूल्यवान वस्त्रों से सुसज्जित मंगल हाथी के हौदे पर स्थापित किया और राजकीय श्वेतछत्र से आच्छादित कर एक श्वेतके तुसैनिक टुकड़ीसहित गाजे बाजे के साथ तक्षशिला की यात्रा के लिए प्रस्थान करवाया।

रास्ते पर छिड़काव करवाकर बालू बिछवाई। दोनों ओर मांगलिक वंदनवारें तथा स्वच्छ पानीभरे कलश रखवाए और अपने नगर की सीमा तक स्वयं साथ-साथ पैदल गया। इसके आगे की यात्रा के लिए संदेश-वाहकों को आदेश दिया कि धर्मरत्न की यह अनमोल भेंट तक्षशिला तक अत्यंत सम्मानपूर्वक ले जायी जाय और वहां पहुँचने पर मेरे मित्र को मेरी ओर से यह संदेश दिया जाय कि इसे किसी एकांत स्थान में आदरपूर्वक खोलकर देखे।

पुक्कुसाति ने अपना उपहार जनसम्मुख खोले जाने का संदेश भेजा था, ताकि जनता पर दोनों राजाओं की मित्रता की गहरी छाप पड़े। परन्तु बिम्बिसार अपनी भेंट अकेले में खोले जाने का संदेश भेजता है। बिम्बिसार जानता है कि पुक्कुसाति के पास पूर्व जन्मों की पुण्य पारमी होगी तो धर्म का यह संदेश पढ़कर राज्य त्यागने की बात सोचेगा और ऐसी अवस्था में परिवार और राज्यशासन व नगर के अन्यान्य उपस्थित लोग उसके उत्साह को शिथिल करने का प्रयत्न करेंगे। अतः उसके लिए एकांत ही कल्याणकारी होगा।

हजारों मील की लंबी यात्रा पूरी करता हुआ यह शाही कारवां जब गांधारदेश की सीमा पर पहुँचा तो पुक्कुसाति ने अपने आमात्यों को भेजकर इस राज्य-उपहार की समुचित अगवानी करवायी और तक्षशिला तक की यात्रा बड़ी धूमधाम के साथ ससम्मान पूरी करवायी। राजनगरी तक्षशिला की सीमा पर स्वागत के लिए पुक्कुसाति स्वयं पहुँचा और जुलूस के साथ राजमहल तक पैदल चलकर आया।

मित्र बिम्बिसार के सुझाव के अनुसार उसने यह अनमोल पिटारी राजमहल के एकांत कक्ष में पहुंचाई और द्वार पर एक प्रहरी बैठाकर अकेलेमें स्वयं अपने हाथों **उपहार की पिटारी खोली।** लाख की राज्य मुहर तोड़कर पेटी में से पेटी निकालते हुए, अंत में रत्नखचित स्वर्ण-मंजूषा निकाली और उसे खोलकर गोल लपेटे गए लंबे स्वर्ण-पत्र को अत्यंत आदर पूर्वक बाहर निकाला।

"मेरे मित्र ने मेरे लिए धर्म का यह अनमोल उपहार भेजा है जो मध्यदेश जैसी पावन भूमि में ही उपजता है। यहां मिलना असंभव है।" अतः बड़ी भावभीनी श्रद्धा के साथ स्वर्णपत्र को खोलकर पढ़ने लगा। देखूं, मेरे मित्र का क्या धर्म-संदेश है?

पहली ही पंक्ति थी – **इध तथागतो लोके उप्पन्नो।**

यहां लोक में तथागत उत्पन्न हुए हैं।

क्या सचमुच संसार में तथागत बुद्ध उत्पन्न हुए हैं! क्या सचमुच मैं बुद्धकाल में जन्मा हूं! इस चिंतन मात्र से उसके मन में प्रसन्नता का एक प्रबल प्रवाह फूट पड़ा। और फिर जब आगे,

"इतिपि सो भगवा... आदि" इन शब्दों में भगवान के गुणों का वाचन किया तो पढ़ते-पढ़ते शरीर के ११ हजार रोमकूप उत्थापित हो उठे। सारा मानस पुलकित हो गया। सारा शरीर रोमांचित हो गया। कुछ देर इसी प्रसन्नताविभोर अवस्था में सुध-बुध खोए रहा। यह भी होश न रहा कि मैं बैठा हूं या खड़ा हूं। आगे की पंक्तियां पढ़ ही न सका। यों भावविभोर अवस्था में बहुतसा समय बीत जाने के बाद जब भावावेश कुछ कम हुआ तो आगे पढ़ना शुरु किया। आगे शुद्ध धरम के गुणों की व्याख्या थी।

"स्वाक्खातो भगवता धम्मो... आदि" पढ़ते-पढ़ते फिर तन-मन उसी प्रकार पुलकन-सिहरन से भर उठे। फिर तीव्र भावावेश जागा। फिर कई देर तक सुध-बुध खोए रहा। कुछ समय बाद मन शांत हुआ तो आगे संघ के गुणों की पंक्तियां पढ़ी -

"सुपटिपन्नो भगवतो सावक संघो... आदि" तो फिर वही दशा हुई। तदन्तर पत्र के चतुर्थ भाग को पढ़ने लगा तो उसमें आनापान साधना का विवरण था, जिसे पढ़ते-पढ़ते चित्त और शरीर में आनंद की ऐसी धाराप्रवाह अनुभूति होने लगी कि सहज ही चित्त एकाग्र हो गया। समाधिस्थ हो गया। अनेक जन्मों की पुण्यपारमिताओं का संग्रह था, अतः चित्त तत्काल प्रथम ध्यान समापत्ति में समाहित हो, अल्पकाल में ही प्रथम से द्वितीय, द्वितीय से तृतीय और तृतीय से चतुर्थ ध्यान समापत्ति में गहनतापूर्वक समाधिस्थ हुआ। बाहरी आलंबनों का जरा भी भान नहीं रहा। यह अवस्था देर तक चली। यद्यपि अभी विपश्यना की ऊंची अवस्थाएं नहीं प्राप्त हुई थीं, परन्तु चौथी ध्यान-समापत्ति का धर्म रस ही इतना अपूर्व था कि बार-बार उसी के अभ्यास में लगा रहा और उसके रसास्वादन में दो सप्ताह बिता दिए।

कक्ष के द्वार पर पहरेदार बैठा था। केवल एक व्यक्तिगत सहायक के अतिरिक्त अन्य किसी का प्रवेश निषिद्ध था। १५ दिनों तक देश का राजा न राजमहल के रनिवास में गया और न राजदरबार में, न न्यायालय में और न ही सेनालय में। राज्य के प्रमुख लोगों को चिंता होने लगी कि हमारे राजा को ऐसा क्या उपहार मिला है, जिससे कि वह इस प्रकार वशीभूत हो गया है?

चतुर्थ ध्यान समापत्ति के शांति रस की स्वानुभूति से प्रभावित हुए राजा पुक्कुसाति को अपने मित्र के अंतिम बोल याद आए। सचमुच मुझे राज्य त्यागकर तुरंत अभिनिष्क्रमण कर देना चाहिए। मेरा सद्भाग्य है कि इसी समय देश में बुद्ध उत्पन्न हुए हैं। उनके सान्निध्य में रहकर भवभ्रमण के दुःखों से सर्वथा विमुक्त कर देनेवाली विपश्यना विद्या सीखकर मुझे अपना मनुष्य जीवन सार्थक कर लेना चाहिए। न जाने जीवन थोड़ा ही बचा हो। महान उपकार है मेरे मित्र का, जिसने मुझे ऐसी कल्याणी सूचना भिजवाई।

यों जीवनमुक्त अर्हंत होने के उद्देश्य से भगवान बुद्ध के बताए मार्ग पर चलने के लिए राजपाट, घरबार त्यागने का दृढ़ निश्चय किया। अपने हाथों कृपाण से शीश और दाढ़ी-मूंछ के केश काटे और सहायक से दो काषाय वस्त्र मँगवाए। एक को अधोवस्त्र बनाकर पहना, दूसरे को ऊर्ध्व वस्त्र बनाकर ओढ़ा। मिट्टी का एक भिक्षा-पात्र और लकड़ी का एक दंड भी मँगवाया। इन्हें हाथ में लेकर महल के नीचे उतर आया।

राजपरिवार के लोग उसे इस वेष में नहीं पहचान पाए। समझा कोई संन्यासी राजा से मिलने आया होगा और अब लौट रहा होगा। राजदरबार के राजपुरुष भी उसे नहीं पहचान पाए। परन्तु जब निजी सहायक ने सारी स्थिति स्पष्ट की तो रनिवास और दरबार में कुहराम मच गया। दावानल की भांति यह सूचना सारे नगर में फैल गयी। पुक्कुसाति जैसे प्रजावत्सल राजा के राज्यत्याग की सूचना ने सारी प्रजा को दुःखसागर में डुबो दिया। प्रजा पर अनभ्र वज्रपात हुआ। शोक-निमग्न रोते-बिलखते हुए नगरनिवासी, राज्य के शासनाधिकारी और राजपरिवार के लोग भिक्षु वेशधारी पुक्कुसाति के पीछे हो लिए। लोगों ने क्रंदन करते हुए, कहा -

"महाराज, आपके बिना हम अनाथ हो जायेंगे।"

पुक्कुसाति ने सान्त्वनाभरे शब्दों में कहा, - "यहां अनेक योग्य व्यक्ति हैं जो मेरी अनुपस्थिति में राज्य-प्रशासन के दायित्व को अत्यंत कुशलतापूर्वक निबाहेंगे।"

मंत्रियों ने उसे समझाने की चेष्टा की-"महाराज, मध्यदेश के राजा बड़े मायावी होते हैं। कुटिल होते हैं। उनकी कूटनीति छल-छद्म से परिपूर्ण होती है। कोन जाने लोक में सम्यक्‌सम्बुद्ध उत्पन्न हुए भी हैं या नहीं? हो सकता है कि यह सब प्रवंचना हो। आप को राज्यच्युत करवाकर गंधार देश को दुर्बल बना दिया चाहता हो, ताकि समय पाकर उसे हड़प ले।"

- "नहीं, मंत्रियों, मेरे परम मित्र के प्रति ऐसा शक-संदेहन करो। मगध का राज्य गंधार देश से बहुत दूर है। बीच में कौशल, कौशाम्बी, चेदिय, पांचाल, कुरु जैसे शक्ति-सम्पन्न जनपद हैं। उनका अतिक्रमण करके गंधार देश को हथिया लेना असंभव है। यह अनदेखा मित्र, मेरा परम हितैषी है। जानता है कि भगवान मगध देश में विहार कर रहे हैं। अतः वह स्वयं गृहस्थ रहते हुए भी उनके सान्निध्य का दीर्घकालीन लाभ ले सकता है। परन्तु भगवान मध्यदेश छोड़कर इतनी दूर विहार करने आयेंगे नहीं। अतः मैं उनके सान्निध्य से वंचित रह जाऊंगा। इसीलिए उसने मुझे गृह त्यागकर उनके समीप रहने के लिए प्रोत्साहित किया है। मंत्रियों, मेरे मित्र के प्रति मिथ्या संदेह कर दोष के भागी न बनो। वह मेरा कल्याण चाहनेवाला सन्मित्र है।

"बद्ध उप्पादो दुल्लभो लोकस्मिं" राज आमात्यों, संसार में बुद्ध का उत्पन्न होना सचमुच दुर्लभ है। मेरे और मेरे जैसे अनेकों के सौभाग्य से यह दुर्लभता सुलभ हुई है। मुझे उनकी शरण जाने दो। अनेक जन्मों में मुक्ति की खोज में मैं व्यर्थ भटका हूं। अब इसे प्राप्त करने का सुअवसर आया है। मुझे इस लाभ से वंचित करने का वृथा प्रयत्न मत करो।"

यों बहुत प्रकार से समझाने पर भी लोग नहीं माने। रोते बिलखते, उसके पीछे चलते ही गए। तब पुक्कुसाति ने दृढ़ता का कदम उठाया। उसने अपने दंड से मार्ग पर एक रेखा खींच दी और कहा-"मैंने गृही जीवन का त्याग कर दिया है। परंतु अब भी तुम मुझे अपना राजा मानते हो तो सुनो, यह राजाज्ञा है। कोई इस सीमा का उल्लंघन न करे।"

लोग राजा पुक्कुसाति के इस दृढ़ निश्चय को देखकर हताश हुए और राजाज्ञा को नमस्कार कर, रोते-बिलखते नगर लौट गए। गृहत्यागी श्रमण पुक्कुसाति गंधार से मगध की ओर जानेवाले महापंथ पर पैदल चल पड़ा।

तक्षशिला से राजगिरी का रास्ता बहुत लंबा था। पर भूतपूर्व गंधार नरेश अब एक सामान्य भिक्षु के रूप में सुदृढ़ निश्चय और सबल कदमों से चला जा रहा था। - "भगवान बुद्ध अपने हाथों अपने केश काटकर काषायवस्त्र धारण करके चले, तो अकेले ही सत्यान्वेषण की चारिका पर निकले थे। मुझे उन्हीं के चरण-चिन्हों पर चलना है। मैं भी अकेला विचरण करूंगा। उन्होंने पांव में पनही भी नहीं पहनी थी। मैं भी नंगे पांव यात्रा करूंगा। उन्होंने किसी वाहन का प्रयोग नहीं किया था। मैं भी किसी वाहन का प्रयोग नहीं करूंगा। उन्होंने सिर पर पत्तों के छाते का भी प्रयोग नहीं किया था। मैं भी खुले सिर ही यात्रा करूंगा। उन्होंने बिना मांगे जो मिले, उसी से यात्रा की थी। मैं भी अदिन्नादान से विरत रहकर यात्रा करूंगा। दातून के लिए किसी पेड़ की डाली भी स्वयं नहीं तोडूंगा। किसी जलाशय से मुँह धोने के लिए पानी भी स्वयं नहीं ग्रहण करूंगा। कोई न दे तो भोजन भी नहीं ग्रहण करूंगा।"

इन दृढ़ व्रतों का अटूट संकल्प धारण कर भिक्षु पुक्कुसाति कदम-कदम आगे बढ़ने लगा। तक्षशिला से राजगिरि की यात्रा लंबी ही नहीं दुर्गम भी है। राजमहलों की सुख-सुविधा और वैभव-विलास में जन्मा पला पुक्कुसाति खुरदरी कड़ी धरती पर नंगे पांव चल रहा है। पांव में छाले पड़ गए हैं। चलते-चलते छाले फूट गए हैं। घावों में पीप पड़ गई है। पीप बहने लगी है। पैदल चलने का श्रम तो है ही। इन फोड़ों और फफोलों की पीड़ा भी कम तीव्र नहीं है।

आगे-आगे व्यापारियों का एक कारवां चल रहा है। पीछे-पीछे पुक्कुसाति दृढ़ कदमों से पैदल चल रहा है। सामने चल रहीं सैकड़ों बैलगाड़ियों पर क्रय-विक्रय का सामान लदा है। साथ-साथ कुछ एक आलीशान रथनुमा बैलगाडियां चल रही हैं, जो कारवां के मालिक साहूकारों के सोने-बैठने और आराम करने के लिए हैं। इनमें झालरवाले आरामदेह मोटे गद्दे, तकिए और मसनद लगे हैं। एक-एक गाड़ी को दो-दो श्वेतवर्णी स्थूलोदर विशाल वृषभ खींच रहे हैं। इनके पेट की लटकन धरती को छूतीसी लगती है। बड़े-बड़े सींगवाले सुंदर चेहरे हैं इनके। सींगों को नयनाभिराम रंगों से रँगा है। गले में एक-एक घंटी बँधी है। प्रत्येक बैल की पीठ पर ख़ूबसूरत कसीदे की कढ़ाई की हुई रंग-बिरंगी खोल लगी है, जिसमें नन्हीं-नन्हीं घंटियों की झालर झूल रही है। गाड़ी के चक्कों के आरों पर घुंघरू बँधे हैं। प्रत्येक रथ पर जुते हुए दोनों बैल एक साथ अपना सिर हिलाते और झूमते हुए गाड़ी खैंचते हैं तो इन घंटे, घंटियों और घुँघरुओं का समवेत स्वर पैदा होता है। यह रुनझुन स्वर बड़ा चित्ताकर्षक है, परन्तु पीछे-पीछे चलते भिक्षु का ध्यान इन पर नहीं जाता। वह नजर नीची किए हुए अपनी श्रमसाध्य यात्रा पैदल पूरी कर रहा है।

सूर्यास्त होने पर कारवां कहीं रुकता है। मालिकों के लिए ख़ूबसूरत आरामदेह, अन्यों के लिए साधारण तम्बू तान दिए जाते हैं, जिनमें वे रात्रि विश्राम करते हैं। परन्तु भिक्षु उनके समीप भी नहीं जाता। कुछ दूरी पर किसी पेड़ के नीचे पाल्थी मारकर बैठ जाता है। न घाव भरे पांव धोने के लिए पानी है। न दुखती पीठ सहलाने का कोई साधन है। परन्तु आनापान का ध्यान करते हुए शीघ्र ही उपचार से अर्पणा समाधि की ओर बढ़ कर पहले से चौथे ध्यान की समापत्ति में समाहित हो जाता है। रात भर ध्यान में लीन रहकर शरीर की सारी हरारत, थकावट दूर कर लेता है। दूसरे दिन तरेताजा हो, यात्रा के लिए फिर तैयार हो जाता है।

कारवां के लोग सुबह-सुबह कानाश्ता कर चुकने पर बचा-खुचा भोजन तथा कुछ जूठन भिक्षु के भिक्षापात्र में डाल देते हैं। भोजन कभी अधपका होता है, कभी बहुत पका। कभी रूखा होता है, कभी गीला। कभी अलोना होता है, कभी बहुलोना। गृहत्यागी राजसी भिक्षु के भिक्षा पात्र में जो पड़ जाए, उसे ही अमृत सदृश स्वादिष्ट मानकर सहर्ष ग्रहण कर लेता है और उसी एकाहार से दिन भर की यात्रा करता है।

कारवां के श्रेष्ठियों को यदि मालूम हो जाय कि यह जो फटेहाल भिखारी पीछे-पीछे चल रहा है, वह स्वयं गांधारनरेश पुक्कुसाति है, जिसकी कृपा से हमें तक्षशिला में आयात-चुंगी की छूट मिली और हमारा मुनाफा कई गुना बढ़ा, तो श्रद्धा और कृतज्ञता से विभोर होकर उसके लिए यात्रा की वह सारी सुविधाएं कर देते, जो कि उन्हें अपने लिए उपलब्ध थीं। परन्तु पुक्कुसाति को यह अभीष्ट नहीं था। उसे एक श्रमण का श्रमसाध्य जीवन श्रेष्ठतर दिखता था। इस कष्ट में उसे अतीव मानसिक तुष्टि और प्रसन्नता मिलती थी। इसी प्रसन्नता में उसने लगभग १९२ योजन की लंबी यात्रा पूरी की।

रास्ते में कारवां श्रावस्ती नगर में से होकर गुजरा। नगर के बाहर निकलने पर जेतवन विहार के सामने से गुजरा। पुक्कुसाति ने सुना यह बुद्ध का विहार है। परन्तु उसने सोचा अनेक लोग बुद्ध होने का दावा करते हैं। मुझे उनसे सरोकार नहीं। मेरे कल्याणमित्र बिम्बिसार ने जिन भगवान गौतमबुद्ध के बारे में लिखा है, मेरे लिए तो वही बुद्ध हैं और वह तो मगधदेशीय राजनगरी राजगिरि में मिलेंगे। इसी विचार से उत्साहित हो, उसने श्रावस्ती से राजगिरि की ४५ योजन की यात्रा पूरी की।

जब राजगिरि पहुँचा तो सूरज ढल चुका था और राज्य के कठोर नियमानुसार नगरद्वार बंद कर दिए गए थे। प्रातःपूर्व किसी के लिए नहीं

खुल सकते थे। अतः उसने राजनगर के बाहर विश्राम करने का निर्णय किया। वहीं यह सूचना मिली कि जिन भगवान सम्यक्सम्बुद्ध से मिलने यहां आया है, वह इस समय श्रावस्ती के जेतवन में विहार कर रहें हैं। अतः उसने निर्णय किया कि एक रात यहीं बिताकर कल भगवान के दर्शन के लिए पुनः वापसी यात्रा पर निकल पड़ेगा।

क्रमशः